खुतबाते कर्बला

आयतुल्लाहिलउज़्मा सैय्यिदुलउलमा सै० अली नक़ी नक़वी ताबा सराह
हिन्दी रूप: सै० गुलाम हुसैन ज़ैदी

खताबा और खुतबा:—

मिम्बर वगै़रा पर या खड़े होकर नस्र (गद्य) में जो कलाम बग़ैर किसी ख़ास सुनने वाले को पेशे नज़र रखे हुए किया जाए उसे अरबी ज़बान में ख़ुतबा कहते हैं। शायद हमारी उर्दू ज़बान में तक़रीर का भी यही मतलब है। इस कलाम के करने को अरबी में ख़िताबत कहते हैं जो बफ़त्हे ख़ा है जिसमें ख़े पर ज़बर है। आम तौर पर लोग कसरा (ज़ेर) के साथ बोलते हैं मगर वह सही नहीं है। ख़ुतबा की लफ़्ज़ कभी इस मसदर (वह शब्द जिससे क्रियाएं बनती हैं, जैसे आना—जाना) के मायने के लिए भी इस्तेमाल होती है। वरना है वह हासिले मसदर यानी इस काम के अन्जाम देने से जो चीज़ वजूद में आई वह ख़ुतबा है और उस शख़्स को जो यह काम अच्छी तरह से कर सकता हो ख़तीब कहते हैं। (क़ामूसुल्लुग़ात)

अरब और ख़िताबत का फ़न:—

ख़िताबत के ज़रूरी हिस्से हैं बलाग़त और कुव्वते ख़याल (सोचने की ताक़त) और अरब में यह दोनों उनसुर (तत्व) जिस कमाल के साथ थे वह उनकी शायरी से ज़ाहिर ही है। बल्कि उनका क़ौमी नाम अरब ख़ुद ही उनकी बोलने की ताक़त का तर्जुमान (परिचायक) है।

फिर शायरी में बलाग़त की कार्यशैली का रुझान कभी—कभी गहरे जज़्बात के इज़्हार की तरफ़ हो जाता है। जिनमें इन्फ़ेरादी तास्सुरात (व्यक्तिगत भावनाएं) या बाज़ नक़्क़ादों (आलोचक) की ज़बान में केवल दाख़िलियत (आन्तरिक्ता) होती है। मगर ख़िताबत का ताल्लुक़ एक जमात के साथ होता है। इसलिए उसमें तेज़ी और अमल पसन्दी और असर का उन्सुर ज़्यादा पया जाता है। इसलिए वह क़ौमें ख़िताबत में पीछे होती हैं जिन्हें अमल के मौक़े नसीब नहीं होते हैं और जज़्बात को उत्तेजित करने की कोई बुनियाद नहीं होती। लेकिन अरब क़ौम में उनके माहौल और आबो हवा के असर ने आज़ादी, बलन्द हिम्मती और एहसास में शिद्दत कूट—कूट कर भर दी थी। इसलिए बलाग़त उनके दिलों में एक अजीब बिजली की लहर पैदा करती थी। चन्द छोटे जुमले जो बलाग़त के साथ किसी ख़तीब की ज़बान से निकल जाते थे एक बड़ी से बड़ी जमाअत को उठा देते और बिठा देते थे। और फिर उनमें जो आपसी झगड़े और गृह युद्ध होते रहते थे और जो क़बीलों में टकराव होते थे उनमें ख़िताबत के इस्तेमाल के मौक़े ज़्यादा मिलते थे। यह ख़ुतबे अक्सर, जैसा मौक़ा होता था, कमानों को ज़मीन पर टेक कर और नैज़ों या तलवारों से इशारा कर—कर के पढ़े जाते थे और कभी ख़तीब अपने घोड़े पर सवार होकर तक़रीर करता था।

चूँकि शायरी और ख़िताबत के बहुत से अहम अनासिर (तत्व) मुश्तरक (समान) है। इसलिए ज़्यादातर शायर ख़तीब और ज़्यादातर ख़तीब शायर होते थे। और जिस क़बीले में शायर अच्छे होते थे उसमें ख़तीब भी अच्छे पैदा होते थे। फिर भी शायरी और ख़िताबत में जाहिलियत व इस्लाम के लेहाज़ से फ़र्क़ नज़र आता है। जाहिलियत के ज़माने में शायरी को ख़िताबत से ज़्यादा अहमियत दी जाती थी। इसलिए कि ख़िताबत का ताल्लुक़ इजतेमाई (सामूहिक) ज़िन्दगी के साथ होता है। और जाहिलियत में अरब में सांस्कृतिक जीवन बहुत सीमित था। लेकिन इस्लाम में ख़तीब का दर्जा शायर से अहम हो गया।

बात यह है कि इस्लाम ने व्यक्तिगत सुख को

मिटा कर सामूहिक सुख में बदल दिया था। इसलिए यहाँ उपदेश व भाषण, जेहाद के लिए तेयार करना, कार्यकलापों को व्यवस्थित करना इन्हीं चीज़ों का चलन था। और यह कोई बात बग़ैर ख़िताबत के नहीं हो सकती। इसीलिए पैग़म्बरे इस्लाम[स॰] जबकि कुदरत की जानिब से शायरी से इस हद तक अलग रखे गए कि एलान हो गया ''हम ने उसको शायरी नहीं सिखाई''। फिर भी ख़िताबत में आपका मुक़ाम निहायत ऊँचा है। हज़रत अमीरुलमोमिनीन[अ॰] ने अगरचे कभी रजज़ वग़ैरा के मौक़े पर शेर कहे। मगर आपके कलाम का कोई प्रमाणित मजमुआ (संकलन) तक ख़बर लिखने वालों और पुराने उलमा का जमा किया हुआ हाथ में मौजूद नहीं है। मगर ख़ुतबे आपके इस वक़्त तक वह है जो तारीख़ के पन्नों पर सुनहरे शब्दों में नुमायाँ है। और 'नहजुल बलाग़ा' और 'दस्तूरे मआलिमुल हेकम' वग़ैरा किताबों की शक्ल में अलग मौजूद हैं और एक दुनिया से ख़िराजे अक़ीदत (श्रद्धांजलि) हासिल करते हैं।

ख़िताबत को प्रेरित करने के लेहाज़ से कर्बला के मौक़े की अहमियत:—

दस मुहर्रम 61 हिजरी को होने वाली कर्बला की घटना जिसके सिलसिले की क़रीबी कड़ियाँ रजब 60 हिजरी से शुरु हुईं थीं इसमें जितनी ख़िताबत को प्रेरित करने वाली चीज़ें जमा थीं उतनी दुनिया की तारीख़ में कहीं मुश्किलसे नज़र आ सकती हैं।

यह एक बहुत बड़ा हक़्क़ो—बातिल का मुक़ाबला था। माद्दियत (भौतिकता) व रूहानियत (अध्यात्मिकता) का कभी न ख़त्म होने वाला टकराव था। एक बहुत छोटी संख्या के लोगों के इरादे व हिम्मत, जोश व उमंग के उस प्रदर्शन का मौक़ा था जो उसे अपने से कई गुना ज़्यादा तादाद और मुश्किलों व मुसीबतों के सैलाब के मुक़ाबले में पुर इस्तेक़लाल (स्थिर) और बाअमल रख सके। और हक़ से बेख़बर या तास्सुब (भेदभाव) बरतने वाले दुश्मन गिरोह के सामने सच के इज़हार और हुज्जत तमाम करने की वह कोशिश थी जो उसके ग़लत कामों में क्षमा याचना या बहाने का कोई पहलू बाक़ी न रखे। और क़यामत तक आने वाली नस्लों के सामने इस नाबराबर मुक़ाबले के कारणों को पेश कर देना था जो आइन्दा तारीख़ के लिए हक़ को पहचानने और मामलों को समझने का सरमाया बन सकें। यह तमाम मक़सद ख़ुतबों के ही ज़रिये से हासिल हो सकते थे। और इसलिए करबला से मुताल्लिक़ ख़ुतबों को सिर्फ़ अदबी हैसियत से अहमियत हासिल नहीं है बल्कि हुसैन[अ॰] की शहादत के फ़लसफ़े को समझाने में भी उनका बड़ा दख़्ल है।

वाक़िए कर्बला की भूमिका से सम्बन्धित सबसे पहला ख़ुतबा:—

जहाँ तक मुझे मालूम है हज़रत इमाम हुसैन[अ॰] ने मदीन—ए—मुनव्वरा से रवानगी के वक़्त कोई ख़ुतबा इरशाद नहीं फ़रमाया और न उसका मौक़ा था। इसी तरह मक्क—ए—मोअज़्ज़मा पहुँचने के बाद भी कोई ख़ुतबा हज़रत का नहीं मिलता। इसलिए कि आपकी हैसियत मक्का मोअज़्ज़मा के क़याम में सिर्फ़ एक पनाहगज़ीं (शरणार्थी) की थी। हुकूमते यज़ीद के ख़िलाफ़ कोई संगठन बनाने या तैयारी करने की कोई मुहिम आपके सामने न थी। हाँ, आपके मक्का मोअज़्ज़मा में ठहरने की इत्तेला जब कूफ़े में हुई तो कूफ़ा वालों में हरकत पैदा हुई। और सुलेमान बिन सर्द ख़ुज़ाई के मकान पर लोग इकटठा हुए। इस मौक़े पर जनाब शैख़ मुफ़ीद अलैहिर्रहमा के अलफ़ाज़ यह हैं कि:—

''कूफ़े वालों को मुआविया के मरने का हाल मालूम हुआ तो यज़ीद की करतूतों की चर्चा होने लगी। और इमाम हुसैन[अ॰] और आपके बैअत यज़ीद से इन्कार और इब्ने ज़ुबैर के वाक़िआत और उन दोनों के मक्के की तरफ़ जाने के हालात भी मालूम हुए। तो कूफ़े के शिया सुलेमान बिन सर्द ख़ुज़ाई के मकान में जमा हुए और उन लोगों ने मुआविया के मरने का ज़िक्र किया और ख़ुदा का शुक्र अदा किया।

इस मौक़े पर सुलेमान बिन सर्द ख़ुज़ाई ने कहा कि मुआविया की मौत हो गई और हज़रत इमाम हुसैन[अ॰] ने बैअत से इन्कार किया है और मक्का मोअज़्ज़मा चले गए हैं। और तुम लोग उनके और उनके पिदरे बुज़ुर्गवार के शिया हो। अब अगर तुम यक़ीन के साथ समझते हो कि उनकी मदद करोगे और उनके दुश्मनों से जंग करोगे

तो उन्हें ख़त लिखो और अगर सुस्ती और कमज़ोरी का अन्देशा (सन्देह) महसूस करो तो देखो ख़बरदार धोका देकर उनकी जान को ख़तरे में न डालो। सब ने कहा नहीं बल्कि हम उनके दुश्मन से जंग करें और उनके सामने अपनी जान निसार करेंगे। कहा तो फिर ख़त लिखो। ख़त लिखा गया।''

कलाम के सन्दर्भ से ज़ाहिर होता है कि सुलेमान से पहले कुछ और वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किये थे। उसके बाद सुलेमान ने यह दूरअन्देशी की तक़रीर की थी। मगर अफ़सोस है कि पहले मुक़रेरीन (वक्ताओं) के नाम और उनके ख़ुतबे हम तक नहीं पहुँच सके। इसलिए जहाँ तक हमारी पहुँच का सम्बन्ध है सुलेमान ही के शब्दों को इस सिलसिले का पहला ख़ुतबा मान रहे हैं। यह भी ज़ाहिर कि यह सुलेमान का पूरा ख़ुतबा नहीं है बल्कि इसका एक ख़ुलासा (सारांश) है जो हम तक पहुँच सका है।

आबिस शाकरी की तक़रीरः—

जब हज़रत सय्यदुश्शोहदा^अ॰ ने अपने चचाज़ाद भाई मुस्लिम बिन अक़ील को अपना नायब बनाकर कूफ़े रवाना किया और वह कूफ़े पहुँचे। इस मौक़ के हालात में तबरी ने लिखा है:—

''मुस्लिम कूफ़े में पहुँच कर मुख़्तार बिन अबी उबैदा के मकान में जो आजकल ख़ान—ए—मुस्लिम बिन मुसय्यब के नाम से मशहूर है, ठहरे और शिया लोग उनके पास आने जाने लगे। जब एक काफ़ी जमाअत उनके पास जमा हो गई तो उन्होंने उनके सामने हज़रत इमाम हुसैन^अ॰ का ख़त पढ़कर सुनाया। सब लोग रोने लगे। उस वक़्त आबिस बिन अबी शबीब शाकरी खड़े हुए और उन्होंने हम्दो सनाए इलाही (ईश्वर की प्रशंसा) अदा की। फिर कहा साफ़ बात यह है कि मैं आपको उन लोगों के मुताल्लिक़ कुछ बताना नहीं चाहता। और नहीं समझ सकता कि उनके दिलों में क्या है और उसके मुताल्लिक़ आपको धोखा देना पसन्द नहीं करता। बख़ुदा जो कुछ मैंने अपने दिल में ठान रखा है वह मैं आपको बताता हूँ। बख़ुदा जब आप लोग बुलाएंगे तो मैं फ़ौरन लब्बैक कहूँगा और आप हज़रात के सामने अपनी तलवार से आख़िरी दम तक हर्बो—ज़र्ब (मार—काट) करूँगा जिससे मेरी नियत सिर्फ़ अल्लाह की ख़ुशनूदी (प्रसन्नता) होगी और कुछ नहीं।''

अगरचे यह ज़ाहिर होता है कि यह शब्द जनाबे मुस्लिम से कहे गये हैं। इस लिहाज़ से उसे ख़िताबत नहीं बल्कि बातचीत में शामिल करना चाहिए। मगर उसके पेश होने का अन्दाज़, खड़ा होना, हम्दो सना अदा करना और फिर उसका पसमन्ज़र (पृष्ठभूमि) और मज़मून यह बताता है कि उसमे इस मुनासिबत से कि जनाब मुस्लिम ने हज़रत इमाम हुसैन^अ॰ का ख़त पढ़कर सुनाया था अगरचे मुख़ातिब जनाब मुस्लिम हैं मगर मक़सद उससे तमाम मजमे को प्रभावित करना और एक तरफ़ उनके ख़ाली—ख़ूली रोने पीटने को बेकार ज़ाहिर करना और दूसरी तरफ़ अपने अज़्म व इरादे की इत्तेला देकर उन्हें अपने—अपने दिल की गहराईयों में जाएज़ा लेने की तरफ़ मुतवज्जेह करना है। और इसलिए उनके अलफ़ाज़ को एक ख़ुतबे ही की हैसियत देना सही मालूम होता है।

हबीब बिन मज़ाहिर की तक़रीर

उसी जलसे में आबिस बिन अबी शबीब शाकरी के बाद तबरी का बयान है:—

हबीब बिन मज़ाहिर खड़े हुए और कहा ''ख़ुदा की रहमत तुम पर। तुमने अपने दिल की बात बड़े मुख़्तसर (संक्षिप्त) अलफ़ाज़ में अदा कर दी।'' फिर कहा ''मैं भी, क़सम उस ख़ुदा की, जिसके सिवा कोई माबूद बरहक़ नहीं, यही इरादा रखता हूँ जो इनका इरादा है।''

सईद बिन अब्दुल्लाह हनफ़ी की तक़रीर

हबीब बिन मज़ाहिर की तक़रीर के बाद तबरी ने लिखा है:— ''फिर सईद बिन अब्दुल्लाह हनफ़ी ने ऐसा ही कहा।''

ऐसा ही के मायने वही अलफ़ाज़ तो नहीं समझना चाहिए बल्कि ऐसी तक़रीर की जिसका मज़मून (विषय) वही था। इसका मतलब यह है कि उनके असल अलफ़ाज़ हम तक नहीं पहुँच सके कि वह क्या थे।

यह तीनों तक़रीरें जिस सच्चाई के साथ हुई थीं। उन्हें करबला में इन बहादुरों के ख़ून ने सही साबित कर दिया।

दरबारे दुश्मन में एक मुख़्तसर मगर बेहतरीन ख़ुतबाः—

यह ख़ुतबा ही नहीं बल्कि एक हिम्मत का काम

था। जिसके ख़तीब ने इन्तेहाई नाज़ुक और ख़तरनाक माहौल में अपने इस ख़ुतबे से जेहाद हुसैनी में वह इमकानी (अपने बस भर) शिरकत की है जो तारीख़ में यादगार हैसियत रखती है।

यह ख़तीब कै़स बिन मुसहर सैदावी है जिन्हें हज़रत इमाम हुसैन[अ०] ने मक्का मोअज़्ज़मा से ईराक़ की तरफ रवानगी के बाद बत्नुर्रिमाह के हाजिर नामी मक़ाम से कूफ़ा वालों के नाम ख़त देकर भेजा था। वहाँ सूरते हाल यह थी कि मुस्लिम बिन अक़ील शहीद हो चुके थे और इब्ने ज़ियाद की तरफ़ से कूफ़े की नाकाबन्दी हो गई थी। और इसी सिलसिले में क़ादसिया के नाके पर हसीन बिन नुमैर हज़ारों की फौज लिए हुए तैनात था।

शेख़ मुफ़ीद लिखते हैं और तबरी की रिवायत भी इससे सहमत है:—

कै़स बिन मुसहर इमाम हुसैन[अ०] का ख़त लेकर कूफ़े की तरफ रवाना हुए। यहाँ तक कि जब क़ादसिया पहुँचे तो हसीन बिन नुमैर ने उन्हें गिरफ़्तार कर दिया और उन्हें उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद के पास भेज दिया। इब्ने ज़ियाद ने उनसे कहा कि चढ़ों और हुसैन बिन अली को बुरा कहो। यह सुनकर कै़स मिम्बर पर गए। हम्दो सना—ए—इलाही के बाद कहा कि ''ऐ लोगों तुमको मालूम होना चाहिए कि हुसैन बिन अली ख़ुदा के बन्दों में सबसे बेहतर फ़ातिमा[स०] दुख़्तरे पैग़म्बर के बेटे हैं। और मैं उनकी तरफ़ से तुम्हारे पास भेजा हुआ आया हूँ। तुम्हारा फ़र्ज़ है कि उनकी मदद के लिए रवाना हो जाओ।'' उसके बाद उन्होंने इब्ने ज़ियाद और उसके बाप पर लानत की और हज़रत अली इब्ने अबीतालिब[अ०] पर दुरूद भेजा और आपकी तारीफ़ की। फौरन इब्ने ज़ियाद ने हुक्म दिया कि उन्हें महेल के कोठे से नीचे गिरा दिया जाए। वह गिरा दिये गये और उनके जिस्म के टुकड़े—टुकड़े उड़ गए। और एक रिवायत में है कि वह इस हाल में ज़मीन पर गिरे कि उनके हाथ पाँव बंधे पड़े हुए थे तो उनकी हड्डियाँ टूट गईं। मगर उनमें ज़रा सी जान बाक़ी थी तो एक शख़्स जिसका नाम अब्दुल मलिक बिन उमैर लहमी था बढ़ा और उसने उन्हें ज़िब्ह (क़त्ल) कर दिया। जब इस बारे में उसे बुरा कहा गया तो उसने कहा ''मैंने तो चाहा कि उन्हें तकलीफ़ से छुटकारा दिला दूँ''।

इस ख़ुतबे की अगर व्याख्या की जाए तो काफ़ी लम्बी होगी। कै़स के अलफ़ाज़ से ज़ाहिर है कि वह जानते थे कि इस ख़ुतबे के ख़त्म होने से पहले उनकी ज़िन्दगी का ख़ात्मा हो जाएगा। इसलिए वह इस थोड़े समय में वह सब कुछ कह देना चाहते थे जो उन्हें कहना था। इसलिए इब्ने ज़ियाद की इस फ़रमाइश पर कि ऊपर जाकर हुसैन बिन अली[अ०] को बुरा कहो। उन्होंने एक लम्हा भी देर नहीं की। इससे इब्ने ज़ियाद को यह समझने की काफ़ी वजह थी कि माहौल की हैबत ने कै़स को अपनी जान की ख़ैर मनाने पर आमादा कर दिया है। और वह अब अपनी जान की हिफ़ाज़त के लिए वह सब कुछ करने पर तैयार हैं जो मैं कहूँ। बलन्दी पर जाने के बाद उन्होंने इब्ने ज़ियाद की बुराई या अमीरुलमोमिनीन की तारीफ़ को पहले नहीं रखा। क्योंकि फिर उनका असल मक़सद रह जाता। उन्होंने शदीद दिली बेचैनी के बावजूद अपनी तक़रीर को जैसा कि संतुलित और संतुष्ट हालात में करना चाहिए उस के मुताबिक़ हम्दो सना—ए—इलाही (अल्लाह की तारीफ़) से शुरु की जिससे इब्ने ज़ियाद कुछ समझ ही नहीं सकता था कि वह इसके बाद क्या कहेंगे। फिर उन्होंने अपनी बात की शुरुआत हुसैन बिन अली[अ०] के नाम के साथ की जिससे इब्ने ज़ियाद और तमाम मजमा ध्यान से सुनने लगा कि अब उसके बाद हुसैन[अ०] का दोस्त और हुसैन[अ०] का क़ासिद वह कुछ कहेगा जो हुसैन[अ०] के दुश्मनों का दिल चाहता है। मगर इसके बाद (अगरचे रवायत करने वालों ने नहीं बताया) मगर अवश्य उनके बयान की रफ़्तार तेज़ हो गई। उन्होंने बिजली की सी गरज और बिजली की सी तड़प के साथ हुसैन[अ०] की ज़ाती बलन्दी और ख़ानदानी ख़ुसूसियतें (इब्ने फ़ातिमा बिन्ते रसूलुल्लाह[स०]) और अपना हुसैन के दूत होने और कूफ़ा वालों के कर्तव्य का एलान किया। और अब अपने सफ़र के मक़सद और ज़िन्दगी के माहसल को पूरा करके मौत को यक़ीनी समझते हुए इतनी देर में कि जब तक जल्लाद उन तक पहुँचे तारीफ़ और बुराई करने के साथ अपनी भावनाओं और अंतरात्मा दोनों की प्यास के बुझाने का सामान किया।

और अब उनकी ज़िन्दगी इब्ने ज़ियाद के लिए इस हद तक नाक़ाबिले बर्दाश्त हो गई कि क़त्ल के किसी ऐसे हुक्म के बजाए जिसमें कुछ देर लगे। बेचैनी के साथ अस्वाभाविक तरीक़े से उनको महल के ऊपर से नीचे गिरा देने का हुक्म दिया। यह हो गया और क़ैस की उखड़ती हुई सांसें कह रही थीं

"शादम अज़ ज़िन्दगी–ए–ख़ेश कि कारे करदम"

(मैं अपनी ज़िन्दगी पर ख़ुश हूँ कि मैंने बड़ा काम किया।)

तारीख़े तबरी से पता चलता है कि क़ैस बिन मुसहर की शहादत की ख़बर हज़रत हुर से मुलाक़ात के बाद पहुँची है। कर्बला के बहुत क़रीब मंज़िले अज़ीबुल हजानात पर जब कूफ़े के चार आदमी जो मुजमा बिन अब्दुल्लाह आऐज़ी वग़ैरा थे नाफ़े बिन हिलाल का ख़ाली घोड़ा अपने साथ लिये तिरिम्माह बिन अदी की रहनुमाई में करबला पहुँचे। तबरी ने लिखा है:–

"इमाम हुसैन[अ०] ने फ़रमाया ज़रा वहाँ के लोगों के हालात तो बताओ। मुजमा बिन अब्दुल्लाह आएज़ी ने जो उन चार आने वाले आदमियों में से एक थे कहा कि जो बड़े–बड़े लोग हैं उनको बड़ी रिश्वतें दी गई हैं और उनकी जेबें भर दी गई हैं। इस तरह उनको तरफ़दार बना लिया गया है। लेहाज़ा वह सब एक साथ आपके ख़िलाफ़ हैं। रह गए दूसरे लोग उनके दिल तो आपकी तरफ़ झुकते हैं मगर तलवारें उनकी कल आपके ख़िलाफ़ ही बलन्द होंगी। कहा अच्छा कुछ तुम्हें मेरे क़ासिद की भी ख़बर है? कहा, वह कौन फ़रमाया, क़ैस बिन मुसहर सैदावी। कहा, "जी हाँ उनका वाक़ेआ यह है कि हसीन ने उनको गिरफ़्तार कर लिया और उन्हें इब्ने ज़ियाद के पास भेज दिया। इब्ने ज़ियाद ने उन्हें हुक्म दिया कि वह आपकी और आपके वालिदे बुज़ुर्गवार की शान में नामुनासिब कलमात इस्तेमाल करें। मगर उन्होंने आप और आपके पिदरे बुज़ुर्गवार पर दुरूद भेजा। और इब्ने ज़ियाद और उसके बाप पर लानत की और लोगों को आपके आने की इत्तेला दी और उन्हें आपकी इमदाद की तरफ़ बुलाया। इस पर इब्ने ज़ियाद ने हुक्म दिया और वह महल के ऊपर से नीचे फेंक दिये गये।" यह सुनकर हज़रत की आँखों में आँसू डबडबा आए। और हज़रत रोने लगे। फिर कुरआन की आयत पढ़ी (जिसका मज़्मून यह है) कि कुछ गुज़र गए और कुछ वक़्त के मुन्तज़िर हैं और उन सब ने अपनी बात को बदला नहीं। फिर कहा, "ख़ुदावन्दा उनके और हमारे लिए बहिश्त (जन्नत) को आवभगत की जगह बना दे और हमारे उनके बीच अपनी रहमत की जगह और अपने जमा किए हुए सवाब के मरकज़ (केन्द्र) को एक जगह कर दे।"

इसी से मिलता हुआ अब्दुल्लाह बिन यक़तुर का वाक़ेआ:–

क़ैस बिन मुसहर सैदावी के वाक़ये से बहुत मिलता–जुलता एक वाक़िआ तबरी ने अब्दुल्लाह बिन यक़तुर के बारे में लिखा है। लेकिन इसका ज़िक्र उन्होंने राह के वाक़ेआत में उस मंज़िल पर नहीं किया है जहाँ से अब्दुल्लाह बिन यक़तुर को रवाना किया है। बल्कि उस मंज़िल के हालात में ज़िक्र किया है जहाँ उनकी शहादत की ख़बर पहुँची है। वह लिखते हैं:–

"मुझ से अबुअली अंसारी ने बयान किया बक्र बिन मसअब मज़नी की ज़बानी, उसने कहा कि हुसैन[अ०] जिस चश्मे की तरफ़ से गुज़रते थे वह लोग आपके साथ हो जाते थे। यहाँ तक कि जब आप मंज़िले ज़ुबाला पर पहुँचे तो आपको आपके दूधशरीक भाई अब्दुल्लाह बिन यक़तुर के क़त्ल की ख़बर पहुँची। आपने उन्हें मुस्लिम बिन अक़ील की तरफ़ रास्ते से भेजा था। जबकि यह मालूम नहीं था कि वह शहीद हो चुके हैं। क़ादसिया में हसीन बिन नुमैर की फ़ौज ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और इब्ने ज़ियाद के पास भेज दिया। उसने कहा कि महल के ऊपर चढ़ो और हुसैन बिन अली[अ०] पर (माज़ल्लाह) लानत करो। फिर उतरो तो तुम्हारे बारे में कुछ फैसला करूँगा। यह सुनकर वह महल के ऊपर गए। लोगों के सामने पहुँचे तो कहा "ऐ लोगों! मैं दुख़्तरे रसूले ख़ुदा[स०] हज़रत फ़ातिमा[अ०] के फ़रज़न्द इमाम हुसैन[अ०] का भेजा हुआ हूँ। ताकि तुम उनकी मदद और नुसरत करो इब्ने मरजाना के ख़िलाफ़ जो सुमय्या की बे बाप की औलाद है। यह सुनना था कि उबैदुल्लाह इब्ने ज़ियाद ने हुक्म दिया और उन्हें महल के ऊपर से ज़मीन की तरफ़ फेंक दिया गया। जिससे उनकी हड्डियाँ टूट–फूट गईं

और उनमें ज़रा सी जान बाक़ी रह गई तो एक शख़्स आया जिसका नाम अब्दुल मलिक बिन उमैर लहमी था उसने उन्हें ज़िब्ह किया। तो जब लोगों ने बुरा भला कहा तो उसने कहा कि मैंने तो चाहा कि उन्हें राहत दे दूँ। हश्शाम का बयान है कि हमसे अबुबक्र बिन अयाश ने एक शख़्स की ज़बानी बयान किया। उन्होंने कहा कि वह असल में अब्दुल मलिक इब्ने उमैर लहमी न था जिसने उठकर उन्हें ज़िब्ह किया बल्कि एक दूसरा लम्बे क़द वाला घुंघराले बालों वाला शख़्स था जो अब्दुल मलिक बिन उमैर से कुछ मिलता हुआ था। यह ख़बर इमाम को उस वक़्त पहुँची जब आप मंज़िले ज़बाला पर थे। हज़रत ने लोगों के सामने एक तहरीर पढ़ी जिसमें लिखा था कि बिस्मिल्लाहिर रहमानिर रहीम। वाज़ेह (स्पष्ट) हो कि हमको निहायत दर्दनाक ख़बर पहुँची है और वह मुस्लिम बिन अक़ील हानी बिन उरवह और अब्दुल्लाह बिन यक़तुर के क़त्ल होने की। और यह कि हमारे लोगों ने हम से सहयोग छोड़ दिया। लिहाज़ा जो शख़्स तुम में से वापस जाना चाहे वह चला जाए। उस पर हमारी तरफ़ से कोई ज़िम्मेदारी नहीं।

इसमें जहाँ तक क़ादसिया में गिरफ़्तार होने, इब्ने ज़ियाद के पास भेजे जाने, उसकी तरफ़ से महल पर चढ़कर इमामे हुसैन[अ०] को बुरा कहने के हुक्म और महल पर जाकर उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ तक़रीर करने और वहाँ से गिरा दिये जाने की असली घटना है वह क़ैस बिन मुसहर के वाक़िए के साथ इतना एक सी है कि उन्हें दो अलग–अलग वाक़िए मानना मुश्किल होता है। और इसलिए शैख़ मुफ़ीद अलैहिर्रहमा ने क़ैस बिन मुसहर सैदावी के वाक़िए ही को असली क़रार दिया है और अब्दुल्लाह बिन यक़तुर के नाम से उसमें बतौर एक कथन के लिखा है। उन्होंने लिखा है:–

जब इमामे हुसैन बतनुररिमाह के मक़ाम हाज़िर तक पहुँचे तो क़ैस बिन मुसहर सैदावी को कूफ़े की तरफ़ रवाना किया। और एक क़ौल यह है कि उन्हें नहीं बल्कि आपने अपने दूध शरीक भाई अब्दुल्लाह बिन यक़तुर को रवाना किया था।

आख़िर में अब्दुल्लाह बिन यक़तुर के क़त्ल का यह हाल कि अब्दुल मलिक बिन उमैर लहमी ने ज़िब्ह किया और कहा कि मैं राहत देना चाहता था। उन्होंने क़ैस ही की शहादत के हाल में एक क़रार देकर नक़ल कर दिया है जिसका ज़िक्र पहले हो चुका है। इस सूरत में एक शक्ल तो यह है कि हम क़ैस बिन मुसहर के वाक़िए को असली मानें और यह समझें कि किसी वजह से कुछ रावियों ने इसी को अब्दुल्लाह बिन यक़तुर से सम्बन्धित कर दिया। मगर तबरी ने हज़रत इमाम हुसैन[अ०] की जो तहरीर मंज़िले ज़ुबाला पर पढ़ने का हाल लिखा है उस तहरीर के अलफ़ाज़ में साफ़–साफ़ अब्दुल्लाह बिन यक़तुर ही के मुताल्लिक़ इस वाक़िए को सही समझें और क़ैस बिन मुसहर से इस वाक़िए को सम्बन्धित न मानें। मगर क़ैस का ज़िक्र शेख़ मुफ़ीद और तबरी दोनों ही कर रहे हैं। और लिखते हैं कि वह बतनुररिमाह के मुक़ाम हाजिर से भेजे गए थे। इसके मानी यह है कि उनकी शख़्सियत और उनका इमाम हुसैन[अ०] की तरफ़ से भेजा जाना सर्वमान्य है। तीसरी सूरत यह है कि क़ैस और अब्दुल्लाह दोनों ही के लिए घटना के समान हिस्से को एक जैसा घटित होना मान लें और ख़ास बातों को हर एक से अलग सम्बन्धित करें। यानी यह कहें कि क़ैस और अब्दुल्लाह में इतना फ़र्क़ है कि क़ैस ने शुरु में हज़रत इमाम हुसैन[अ०] की तारीफ़ व तौसीफ़ में ख़ैर ख़लकुल्लाह (अल्लाह के बन्दों में सबसे अच्छा) व इब्ने फ़ातिमा बिन्ते रसूलुल्लाह[स०] के अलफ़ाज़ कहे थे और इसके बाद अपने भेजे जाने का ज़िक्र किया था। और अब्दुल्लाह बिन यक़तुर ने शुरु ही से इसी में यह किया कि बस अपने भेजे जाने का ज़िक्र किया और उनकी मदद और नुसरत करो। और क़ैस ने बाद में इब्ने ज़ियाद और उसके बाप पर लानत की और अमीरुलमोमिनीन पर सलवात भेजी। और अब्दुल्लाह बिन यक़तुर ने इमाम हुसैन[अ०] की मदद की दावत के साथ ही यह कह दिया कि इब्ने मरजाना के ख़िलाफ़ जो सुमय्या की बे बाप की औलाद है। और उसके बाद यह फ़र्क़ समझा जाए कि क़ैस बिन मुसहर का जिस्म कोठे पर से ज़मीन पर गिरते ही टुकड़े–टुकड़े हो गया। मगर अब्दुल्लाह बिन यक़तुर की सिर्फ़ हड्डियाँ टूटी थीं और उनमें थोड़ी सी जान

बाक़ी थी। और अब्दुल मलिक बिन उमैर लहमी ने उन्हें ज़िब्ह किया और जब बुरा कहा गया तो कहा कि मैं उन्हें राहत देना चाहता था।

दोनों रिवायत को एक साथ करने की बज़ाहिर तो यही सूरत है। मगर जो तारीख़ को समझते हैं वह अन्दाज़ा कर सकते हैं कि इसमें क्या विरोधाभास है? इनमें से जिसको पहले इमाम ने रवाना फ़रमाया हो उसके बाद दूसरे के रवाना करने की ज़रूरत क्या थी? दूसरे यह कि वाक़िए की सूरतेहाल से ज़ाहिर है कि इब्ने ज़ियाद का यह हुक्म देना कि महल पर जाकर हुसैन[अ०] को बुरा कहो। मगर उसी से इमाम हुसैन[अ०] के क़ासिद का यह फ़ायदा उठाना कि मिशन का प्रचार कर दे एक हाकिम के लिए और वह भी इब्ने ज़ियाद का सा कितनी शर्मनाक हार थी। अब एक दफ़ा वह इतनी बड़ी चोट खाने के बाद फिर बिल्कुल उसी तरह की चोट खाने के लिए तैयार हो जाता या धोखा खा जाता। इनमे से कोई बात समझ में नहीं आती।

तीसरे यह कि इस सूरत में इमाम हुसैन[अ०] ने मंज़िले ज़ुबाला में जो तहरीर पढ़ी है उसमें मुस्लिम बिन अक़ील और हानी बिन उरवह के साथ दो शख़्सों की शहादत का ज़िक्र होना चाहिए। एक क़ैस बिन मुसहर और दूसरे अब्दुल्लाह बिन यक़तुर। मगर आपके यहाँ ज़िक्र एक ही शख़्स का है दूसरे का कोई ज़िक्र नहीं है। चौथे यह कि मुजमा बिन अब्दुल्लाह आएज़ी से इमाम ने सिर्फ़ अपने एक क़ासिद को पूछा और वह क़ैस बिन मुसहर सैदावी। दूसरे क़ासिद यानी अब्दुल्लाह बिन यक़तुर का कुछ हाल न पूछा कि उन पर क्या गुज़री। हाँ, उन आख़री दो बातों का जवाब यह हो सकता है कि अब्दुल्लाह बिन यक़तुर की ख़बर जनाब मुस्लिम व हानि के साथ पहले आ चुकी थी। जिसकी हज़रत ने मंज़िले ज़ुबाला पर ख़बर दी और क़ैस की ख़बर हुर से मुलाक़ात के बाद तक कोई नहीं आई थी। इसलिए मुजमा बिन अब्दुल्लाह से हज़रत ने उन्हीं के बारे में पूछा।

फिर भी तारीख़ी हैसियत से यह मसला अभी तक मेरी निगाह में मुश्किल की हैसियत रखता है। जो पूरे तौर पर हल होते नज़र नहीं आती।

हुर की फ़ौज के सामने इमाम का ख़ुतबा

इराक़ की तरफ़ जाते हुए जब हुर की एक हज़ार की फ़ौज इमाम से आकर कर्बला में मिली। हज़रत उन्हें पानी पिला चुके और उसके बाद ज़ोहर की नमाज़ का वक़्त आया तो हज़रत ने नमाज़ से पहले उस लश्कर के सामने एक तक़रीर फ़रमाई। जिसका ज़िक्र शैख़ मुफ़ीद और तबरी दोनों ने इस तरह किया है—

हुर इमाम के साथ रहा यहाँ तक कि नमाज़ ज़ोहर[1] का वक़्त आया और इमाम हुसैन[अ०] ने हज्जाज बिन मसरूर(मसरूक़)[2] को हुक्म दिया कि अज़ान दें। जब अक़ामत का वक़्त आया तो इमाम हुसैन[अ०] निकले, एक तहबन्द, एक चादर और जूतियाँ पहने हुए और अल्लाह की तारीफ़ के बाद फ़रमाया "ऐ लोगो,[3] मैं तुम्हारी तरफ़ उस वक़्त तक नहीं आया जब तक कि तुम्हारे ख़त नहीं गए और क़ासिद[4] नहीं पहुँचे कि आइये हमारा कोई इमाम नहीं है। मुमकिन है कि आपके ज़रिये से ख़ुदा हमें सच्चाई व हिदायत के रास्ते पर कर दे। अब अगर तुम लोग इस बात पर क़ायम हो तो मैं आ ही गया हूँ और तुम मुझसे इत्मेनानी तरीक़े से फिर से अहद (प्रण) पैमान करो कि मेरा साथ दोगे। और अगर तुम ऐसा नहीं करना चाहते और तुम मेरा आना पसन्द नहीं करते हो तो मैं जहाँ से आया हूँ वहाँ वापस चला जाऊँ।" यह सुनकर सब ख़ामोश रहे और किसी ने एक लफ़्ज़ भी जवाब में नहीं कहा। हज़रत ने मोअज़्ज़िन को हुक्म दिया कि अक़ामत कहो।

हुर की सेना के सामने दूसरा ख़ुतबा

अस्र की नमाज़ के बाद जबकि अब आगे रवाना होने की तैयारी भी हो चुकी थी। हज़रत ने दूसरा ख़ुतबा इरशाद फ़रमाया। जिसे शैख़ मुफ़ीद और तबरी ने इस तरह लिखा है।

फिर हज़रत ने सलाम फेरा और उन लोगों की तरफ़ मुतवज्जेह हुए और अल्लाह की तारीफ़ के बाद फ़रमाया: "ऐ लोगों, तुम लोग अगर अल्लाह के डर से काम लो और सच्चे लोगों के हक़ को पहचानो तो अवश्य अल्लाह की रज़ामन्दी का अच्छा साधन होगा। हम रसूल[स०] के अहलेबैत हैं और इस मन्सब के ज़्यादा

हक़दार हैं उन लोगों की अपेक्षा जो इसका ग़लत दावा करते है। और जो तुम्हारे साथ जुल्म व ज़्यादती का सुलूक करते हैं। और अगर तुम बहरहाल हमें न पसन्द करते हो और हमारे हक़ को नज़र अन्दाज़ करने पर तुले हुए हो और तुम्हारी राय, जो कुछ तुमने पत्रों में लिखा और दूतों से कहलवाया, अब इसके ख़िलाफ़ है तो मैं वापस चला जाऊँ।'' अब हुर ने जवाब दिया कि बख़ुदा मैं नहीं जानता कि यह ख़त और दूत जिनका आप ज़िक्र करते हैं, क्या है? यह सुनकर इमाम हुसैन[अ०] ने अपने एक सहाबी से फ़रमाया ''ऐ उक़बा बिन समआन, वह दोनों थैले तो ले आओ जिनमें उन लोगों के ख़त हैं'' वह दोनों थैले निकाल कर लाए जो ख़तों भरे हुए थे। और वह ख़त सामने फैला दिये गए।

उसके बाद का एक अहम ख़ुतबा

तबरी की रवायत है:—

अबू मख़नफ़ ने उक़बा बिन अबी ग़ैरार की ज़बानी नक़ल किया है कि इमाम हुसैन[अ०] ने अपने असहाब और हुर के साथियों के सामने मक़ामे बैज़ा पर ख़ुतबा इरशाद फ़रमाया तो पहले अल्लाह की तारीफ़ की। फिर फ़रमाया ''ऐ लोगों हज़रत पैग़म्बरे ख़ुदास० का इरशाद है कि जो कोई शख़्स किसी ज़ालिम बादशाह को देखे कि वह, अल्लाह ने जिन चीज़ों को हराम किया उनको हलाल बनाए हुए है, ख़ुदा के अहद को तोड़े हुए, पैग़म्बरे ख़ुदा[स०] के सुन्नत की विरुद्ध है और अल्लाह के बन्दों के साथ गुनाह व जुल्म और ज़्यादती के काम करता है और वह शख़्स उसको ज़बानी या अमली किसी सूरत से भी तबदील करने की कोशिश न करे तो अल्लाह के लिए मुनासिब होगा कि वह उस शख़्स को उसी ज़ालिम के दर्जे में दाख़िल करे। मालूम होना चाहिए कि यह लोग (शाम वाले) शैतान की इताअत के पाबन्द हो गए। अल्लाह की इताअत को छोड़ चुके हैं। उन्होंने झगड़ा—फ़साद ज़ाहिर किया है। अल्लाह ने जो सीमाएं बाँधी थीं उनको ख़त्म कर दिया है। जो माल सब मुसलमानों का है उसको अपनी मिलकियत समझ लिया है। अल्लाह के हराम किये हुए को हलाल और हलाल को हराम बना दिया है। मैं सबसे ज़्यादा इसका हक़ रखता हूँ कि इस वक़्त क्रान्ति पैदा करने की कोशिश करूँ। और तुमहारे पत्र मेरे पास आ चुके और तुम्हारे दूत पहुँच चुके, इस संकल्प के साथ कि तुम मुझे छोड़ोगे नहीं। मेरे साथ सहयोग को नहीं छोड़ोगे। अब अगर तुम अपने इस समझौते पर क़ायम होतो सीधा रास्ता हासिल करोगे और इस सूरत में मैं हुसैन जो अली और रसूले ख़ुदा की बेटी फ़ातिमा का बेटा हूँ मेरी जान तुम्हारी जानों से जुड़ी हुई है और मेरे बाल—बच्चे तुम्हारे बाल—बच्चों के साथ होंगे और जो मुझ पर गुज़रे उसमें तुमको शामिल रहना होगा और अगर ऐसा न करो और अपने समझौते को तोड़ दो और मेरी बैअत का कड़ा अपनी गर्दनों से उतार फेंको (मेरी बैअत तोड़ दो) तो यह कोई अजीब बात न होगी। तुमने ऐसा ही मेरे बाप, मेरे भाई और मेरे चचा के बेटे मुस्लिम के साथ किया। बड़ा धोखा खाने वाला है वह, जो तुम्हारे धोखे में आए। मगर उससे किसी और का नुक़सान न होगा तुम्हीं अपने हिस्से को हाथ से गंवा दोगे। और अपने नसीब को बर्बाद करोगे। और जो अहद तोड़ेगा अहद तोड़ने से अपना नुक़सान करेगा। और अल्लाह मुझे बहुत जल्द तुमसे बेग़रज़ कर देगा।''

रास्ते का एक और ख़ुतबा

तबरी लिखता है:—

उक़बा बिन अबिल ग़ैरार का बयान है कि इमाम हुसैन[अ०] मक़ामे ज़ी हसम में खड़े हुए और अपने अल्लाह की तारीफ़ की। फिर फ़रमाया सूरते हाल जो है वह तुम देख रहे हो। दुनिया बदल चुकी है और अजनबी हो चुकी है। उसकी नेकियाँ रुख़सत हो गयीं हैं। और वह इन्तिहाई कड़वी व नागवार हो चुकी है। अब नहीं रह गया है उसमें से मगर बहुत कम जैसे पानी बाहाए जाने के बाद उसके अन्दर बच रहने वाले पानी के क़तरे और एक हक़ीर ज़िन्दगी जो ज़हरीली चरागाह जैसी है। क्या तुम्हारी नज़रों के सामने यह हालत नहीं है कि हक़ पर अमल नहीं किया जाता और बातिल से बाज़ नहीं रहा जाता। इस वक़्त जो सच्चा मोमिन हो वह तो सच्चे दिल से मरना चाहेगा। इसलिए कि इस सूरते हाल के मुक़ाबले में मरना मेरे नज़दीक सिवाए शहादत के और कुछ नहीं है। और ज़ालिमों के साथ ज़िन्दगी गुज़ारना सिवाए दिल

तोड़ने के और कुछ भी नहीं है।

ज़ुहैर बिन क़ैन की जवाबी तक़रीरः—

ऊपर लिखे हुए इमाम के ख़ुतबे के बाद तबरी के रावी ने कहा है कि:—

ज़ुहैर बिन क़ैन बजली खड़े हो गए। आपने अस्हाब से कहा कि तुम कुछ कहते हो या मैं कहूँ? सबने कहा, नहीं तुम कहो। उन्होंने अल्लाह की तारीफ़ अदा की फिर कहा "ऐ फ़रज़न्दे रसूल! हम ने आपके इरशाद को सुना। अल्लाह आपका मक़सद पूरा करे। ख़ुदा की क़सम अगर दुनिया बाक़ी रहने वाली होती और हम हमेशा उसमें रहते मगर जुदाई उससे सिर्फ़ आपकी इमदाद और हमदर्दी की वजह से होती तब भी हम आपका साथ देने को इस दुनिया में रहने पर तरजीह (प्राथमिकता) देते।" ज़ुहैर की तक़रीर सुनकर इमाम ने उनके लिए नेकी की दुआ की।

नवीं मुहर्रम की शाम को या शबे आशूर इमाम का यादगार ख़ुतबा

नौ मुहर्रम को सुलह की बातचीत ख़त्म हो चुकी। उमरे साद ने इब्ने ज़ियाद के आदेश के मुताबिक़ फ़ौरन हमला कर दिया और हज़रत इमाम हुसैन[अ०] ने अपने भाई अबुलफ़ज़लिल अब्बास को भेज कर एक रात की मोहलत हासिल की। उस रात की मोहलत मिलने के बाद इमाम ने अपने तमाम अस्हाब को जमा करके अपना ऐतिहासिक ख़ुतबा इरशाद फ़रमाया। जहाँ तक मुझे मालूम है कर्बला में सिर्फ़ यह एक ख़ुतबा है जो आप ने अपने साथियों की जमाअत के सामने पढ़ा है। हालांकि ख़ुतबे के उद्देश्यों यानि प्रलोभन देना, प्रेरित करना, जोश दिलाना, हौसला बढ़ाना, जज़्बात को उभारना इनके लिहाज़ से कर्बला के हालात में जितनी ख़िताबत के इन तक़ाज़ो की ज़रूरत थी वैसा मौक़ा बहुत कम आता है। ज़ाहिर है कि इतनी थोड़ी तादाद की जमाअत में लोगों की कमी को अगर किसी हद तक पूरा कर सकती है तो वह जोश की ज़्यादती और हिम्मत की बलन्दी। मसल मशहूर है कि "हुदि रा तेज़ तर बर ख़्वां चू महमिल रा गराँ बीनी" यानी अगर बोझ ज़्यादा हो तो हुदि को ज़्यादा ऊँची आवाज़ से कहना चाहिए। इसके मुक़ाबले में जितनी रोकने वाली चीज़ें ज़्यादा हैं और हिम्मत के पस्त करने के अस्बाब ज़्यादा हों उतने ही क़ायद (सरदार) को ज़्यादा तक़रीरें करना पड़ेंगी। अगर दूर की मिसाल ढूँढने की ज़हमत गवारा न कीजिए तो थोड़े दिन पहले जर्मनी की लड़ाई की शिद्दत के हालात में चर्चिल की वज़ारत का शुरुआती ज़माना देख लीजिए जब कि हालात नामुवाफ़िक़ (प्रतिकूल) थे और तक़रीरों के ज़ोर पर जंग का इन्हेसार (निर्भरता) रह गया था।

इस हैसियत से देखिये तो एक नावाक़िफ़ इन्सान जिसको कर्बला के वाक़िआत के बारे में मालूम न हो यह ख़याल करेगा कि तीस हज़ार के मुक़ाबले में अपने तक़रीबन सौ सवा सौ लोगों को मैदाने जंग में साबित क़दम रखने के लिए उनके सरदार को लगातार अपनी ख़ुदा की दी हुई एजाज़े बयान (बोलने की अदभुत प्रतिभा) की तमाम ताक़तों के साथ पुरज़ोर अलफ़ाज़ और बिजली की सी कड़क और बादल की सी गरज के अन्दाज़ में तक़रीरें करना होती होंगी। मगर यह वाक़िआ है कि कर्बला में वह बहुत कम संख्या थोड़ी ही सही मगर अज़्म व इरादों (हिम्मत) की ताक़तों और ईमान की मज़बूती के तक़ाज़ों से इतनी भरी हुई थीं कि हज़रत इमाम हुसैन[अ०] को कर्बला पहुँचने के बाद से नवीं मुहर्रम की सेपहर तक आठ दिन और इसके बाद आशूर की रात और आशूर के दिन और आशूर के दिन के तक़रीबन 20—21 घण्टों में एक बार भी इसकी ज़रूरत नहीं हुई कि आप उनके सामने जोशो ख़रोश पैदा करने के लिए कोई ख़ुतबा इरशाद फ़रमाएं।

9 मुहर्रम की शाम को जो ख़ुतबा आपने इरशाद फ़रमाया है उसकी सूरत वह वयक्तिगत हैसियत रखती है जिसे हम चाहे जो कहें मगर प्रलोभन देना व प्रेरित करना तो कह ही नहीं सकते। शेख़ मुफ़ीद[रह०] लिखते हैं:—

इमाम हुसैन[अ०] ने शाम के क़रीब अपने अस्हाब को जमा किया। इमाम ज़ैनुलआबेदीन[अ०] का बयान है कि मैं उस मौक़े पर बीमार था मगर क़रीब आ गया ताकि सुनूँ हज़रत अपने अस्हाब से क्या फ़रमाते हैं। मैंने अपने वालिदे बुज़ुर्गवार को सुना कि आपने फ़रमाया कि "मैं अल्लाह की बेहतरीन तारीफ़ का फ़र्ज़ अदा करता हूँ।

और आराम व तकलीफ़ हर हाल में उसका शुक्र बजा लाता हूँ। ख़ुदावन्दा तेरा शुक्र करता हूँ कि तूने हमें नबुव्वत के ओहदे की इज़्ज़त दी और इल्मे कुरआन की दौलत दी। और दीनी हक़ीक़त के बारे में समझ और अक़्ल दी। और हमें सुनने वाले कान, देखने वाली आँखें और समझने वाला दिल दिया। लेहाज़ा हमें शुक्र करने वालों में शुमार कर।'' उसके बाद यह है कि ''हक़ीक़तन मुझे नहीं मालूम कि दुनिया में कोई अस्हाब जो मेरे अस्हाब से ज़्यादा वफ़ादार और बेहतर हो। और न कोई अज़ीज़ मेरे अज़ीज़ों से ज़्यादा नेक काम करने वाला और बावफ़ा हो। तो अल्लाह तुम्हें मेरी जानिब से अच्छा बदला अता फ़रमाए। वाज़ेह होना चाहिए कि मेरे ख़याल में हमें उन दुश्मनों के हाथों एक ख़ूनी जंग का सामना होगा। हाँ, तो ख़ूब समझ लो कि मैं तुम्हें इजाज़त देता हूँ, तुम सब चले जाओ। बिल्कुल जायज़ तौर पर तुम्हारे लिए इसमें कोई हर्ज नहीं है और न मेरी तरफ़ से कोई ज़िम्मेदारी है। यह रात की तारीकी अब तुम्हारे सामने आ रही है। इसको अपना मरकब (सवारी) बनाओ और रवाना हो जाओ।'' यह सुनना था कि आपके भाईयों, बेटों और भतीजों और अब्दुल्लाह बिन जाफ़र के फ़रज़न्दों ने कहा ''हम क्यों ऐसा करें? क्या इसलिए कि आपके बाद दुनिया में बाक़ी रहें? अल्लाह हमें वह दिन नसीब न करे।'' सबसे पहले यह अलफ़ाज़ अब्बास बिन अली ने कहे फिर तमाम मजमे ने उनके साथ सहमति व्यक्ति की और उसी से मिलते जुलते हुए शब्द कहे।

इस रिवायत को तबरी ने दो तरीक़ों से नक़ल किया है। एक वह तरीक़ा जो ज़हाक बिन क़ैस मश्रिक़ी तक ख़त्म होता है यह इमाम हुसैन[अ॰] के सहाबियों में से ऐसे शख़्स हैं जो बक़ौल तबरी वाक़िए कर्बला से ज़िन्दा बच गए। उसकी कैफ़ियत का बयान और उस पर तबसेरा (टिप्पणी) मौलाना मुज्तबा हसन साहब कामुनपुरी ने मक़तले ज़हाक बिन क़ैस की भूमिका में विस्तार के साथ किया है।

दूसरी रिवायत वह है जो शैख़ मुफ़ीद[रह॰] की रिवायत की तरह इमाम ज़ैनुलआबेदीन[अ॰] तक ख़त्म होती है।

इमाम ज़ैनुल आबिदीन[अ॰] के ज़बानी जो रिवायत दर्ज की है वह तक़रीबन शैख़ मुफ़ीद[रह॰] की रिवायत से बिल्कुल मिलती है। इख़्तेलाफ़ कुछ लफ़्ज़ों का है जिनमें सिर्फ़ विस्तार व संक्षेप वर्णन का फ़र्क़ है। मतलब पर कुछ असर नहीं पड़ता। और किसी–किसी में दोनों रिवायतों में से एक के नुस्ख़ों में कातिब या बीच के रावी की ग़लती या सन्देह मालूम होता है।

इसके बाद लेखक ने शैख़ मुफ़ीद[रह॰] और तबरी की किताबों में जिस तरह लिखा है उसे अलग–अलग बयान किया है। और इस प्रकार की नौ रिवायतें लिखी हैं।

इनमें नम्बर–1, 2, 3, 6 और 9 पहली क़िस्म की रिवायतें हैं जिनके मतलब में कोई विरोध नहीं है। सिर्फ़ ज़रा सा लफ़्ज़ों का फेर या कमी ज़्यादती है। लेकिन न॰ 4 की रिवायत में मतलब में फ़र्क़ है और यह फ़र्क़ ऐसा है जिसे कातिब के सर थोपा नहीं जा सकता बल्कि रावियों के याद का इख़्तेलाफ़ है। किसी को वह फ़िक़्रा याद रहा और किसी को यह। और इसमें ज़रा फ़ैसला भी मुश्किल है कि इमाम ने क्या फ़रमाया था।

पाँच में भी मायने में इख़्तेलाफ़ है और मेरे ख़याल में शैख़ मुफ़ीद[रह॰] के यहाँ की लफ़्ज़ औफ़ा ज़रा ज़्यादा मुनासिब है।

सातवीं रिवायत में शैख़ मुफ़ीद[रह॰] के यहाँ के अलफ़ाज़ का तर्जुमा है कि ''मेरे ख़याल में उन दुश्मनों के हाथों एक ख़ूनी जंग का सामना होगा'' और तबरी की रिवयात का तर्जुमा है कि ''मेरे ख़याल में कल हमारे और उनके बीच फैसलकुन दिन है।'' यहाँ तबरी के अल्फ़ाज़ ज़्यादा सही मालूम होते हैं।

आठवीं रिवायत शैख़ मुफ़ीद के यहाँ है, ''मैं तुम्हें इजाज़त देता हूँ।'' और तबरी में है, ''मैंने तुम्हारे लिए राय क़ायम की है।''

दूसरी रिवायत ज़हाक बिन क़ैस मश्रिक़ी की है यह निम्नलिखित है:–

जब रात हुई तो हज़रत ने फ़रमाया कि ''यह रात तुम पर पर्दा डाल चुकी है। लेहाज़ा इसको अपनी सवारी बनाओ फिर हर एक तुम में से मेरे अज़ीज़ों मेंसे भी एक–एक का हाथ पकड़ ले। और फिर तुम लोग अपनी बस्तियों और शहरों में बिखर जाओ। उस वक़्त

तक के लिए जब इत्मिनान हासिल हो। इसलिए कि यह लोग बस मुझे चाहते हैं और अगर मुझे पा जाएं तो फिर किसी दूसरे की तलाश की तरफ़ मुतवज्जह न होंगे।'' यह सुनकर आपके भाईयों, बेटों, भतीजों और अब्दुल्लाह बिन जाफ़र के फ़रज़न्दों ने कहा कि ''हम ऐसा क्यों करें? इसलिए कि आपके बाद बाक़ी रहें? अल्लाह हमें वह दिन कभी न दिखाए।'' सबसे पहले यह आवाज़ अब्बास बिन अली ने बलन्द की और फिर सबने क़रीब–क़रीब यही कहा। इस पर इमाम हुसैन[अ०] ने फ़रमाया कि ''ऐ अक़ील के फ़रज़न्दों! तुम्हारे लिए मुस्लिम का क़त्ल होना काफ़ी है। तुम चले जाओ तुम्हें मैं ख़ासतौर पर इजाज़त देता हूँ।''

उन्होंने कहा ''इस सूरत में लोग क्या कहेंगे? यह कहेंगे कि हमने अपने बुज़ुर्ग और सरदार और अपने चचाओं की औलाद को जो बेहतरीन चचा थे छोड़ दिया। और उनके साथ न कोई तीर लगाया और न कोई नेज़ा और न तलवार से मुक़ाबला किया और ख़बर भी न ली कि आप पर क्या गुज़री! नहीं, बख़ुदा हम ऐसा नहीं करेंगे। बल्कि आप पर अपने जान व माल और घरबार को कुर्बान कर देंगे। और आपके साथ रह कर जंग करेंगे। ताकि जो कुछ आप पर गुज़रे उसमें हम शरीक रहें। ख़ुदा बुरा करे उस ज़िन्दगी का जो आपके बाद हो।''

इसमें और पहले की रिवायत में अलावा शब्दों में फ़र्क़ के, मतलब में भी फ़र्क़ है। मगर ऐसे जिनसे असल ख़ुतबे के मायने पर कोई असर नहीं पड़ता। इन दोनों तरह के इख़्तेलाफ़ की तफ़सील निम्नलिखित है:–

1– पहली रिवायत में ख़ुतबे का वक़्त बताया है शाम के क़रीब जबकि दूसरी रिवायत में है जब रात हुई। आम शोहरत इसी दूसरी रिवायत के मुताबिक़ हो गयी है कि यह ख़ुतबा आशूर की रात को हुआ है।

2– पहली रिवायत में ख़ुतबे के प्रारम्भिक हिस्से का ज़िक्र है जिसमें हम्दो सलवात व शुक्रे इलाही और अपने ख़ानदानी दर्जों के इज़हार के साथ अस्हाब की वफ़ादारी और अज़ीज़ों की क़राबत परवरी (अज़ीज़ होने का हक़ अदा करना), पर गर्व करने का ज़िक्र है। और यह कि कल जंग का मौक़ा या कुर्बानी का दिन है। और फिर यह कि ''मैं तुम्हें इजाज़त देता हूँ।'' और दूसरे लफ़्ज़ों में ''बैअत तुम्हारी गर्दनों से उठाये लेता हूँ।''

दूसरी रिवायत में शुरु का हिस्सा नहीं लिखा गया है बस यहीं से शुरु किया गया है कि यह रात तुम पर पर्दा डाल चुकी है। और इस फ़िक़रे के मतलब में पहली और दूसरी रिवायत के बताए हुए वक़्त के लेहाज़ से फ़र्क़ हो जाता है। वहाँ चूँकि ख़ुतबे का वक़्त शाम का बताया गया है लेहाज़ा रात पर्दा डाल चुकी है के मायने यह होंगे कि रात इतनी नज़दीक है कि गोया आ ही गयी है। यानि क़रीब होने को ज़ाहिर करने के लिए भूतकाल लाया गया है। और दूसरी सूरत में हक़ीक़ी तौर पर यही मायने होंगे कि रात आ ही गयी है।

3– पहली रिवायत का मज़मून इस फ़िक़रे पर ख़त्म हो जाता है। मगर दूसरी रिवायत में इसके बाद यह इज़ाफ़ा है कि ''हर एक तुम में से मेरे अज़ीज़ों से भी एक–एक का हाथ पकड़ ले और फिर तुम लोग अपनी बस्तियों और शहरों में बिखर जाओ। उस वक़्त तक के लिए कि जब तक इत्मिनान हासिल हो। इसलिए कि यह लोग मेरे तलबगार हैं और अगर मुझे पा जाएं तो फिर किसी दूसरे की तलाश की तरफ़ मुतवज्जह नहीं होंगे।'' पहली रिवायत में इसका ज़िक्र नहीं है मगर सूरते वाक़िआ से ज़ाहिर है कि यह अलफ़ाज़ हज़रत ने ज़रूर इरशाद फ़रमाए होंगे इसलिए अज़ीज़ों और ख़ासतौर से हज़रत अबुलफ़ज़लिल अब्बास को भी अपने ख़्यालात के इज़हार की ज़रूरत पड़ी।

4– हज़रत अबुलफ़ज़लिल अब्बास के जवाब के अलफ़ाज़ जिन से तमाम अज़ीज़ों ने इत्तेफ़ाक़ किया दोनों रिवायतों में एक से हैं। मगर दूसरी रिवायत में हज़रत ने औलादे अक़ील से जो ख़ासतौर से कहा है और उसका जवाब है पहली रिवायत में बयान नहीं है।

आमतौर पर यह रिवायत जो बयान होती है इसमें दोनों के हिस्से मिला दिये जाते हैं। और यह कार्यशैली बज़ाहिर ग़लत नहीं है। इसलिए किसी एक रिवायत में दूसरी रिवायत के मज़मून से इन्कार नहीं किया है। जबकि कुछ हिस्से ख़ुतबे के इस रिवायत में दर्ज हुए हैं और कुछ उसमें। सब इमाम ने इरशाद फ़रमाए

थे लेकिन संक्षेप में हर एक रावी ने कुछ हिस्से बयान किये और कुछ बयान करना ज़रूरी न समझे। पूरे ख़ुतबे में यह सब हिस्से सम्मिलित हों यह नामुमकिन नहीं है बल्कि संदर्भ को देखते हुए यह यक़ीनी है।

अस्हाबे इमाम की जवाबी तक़रीरें:—

तबरी ने लिखा है:—

अबू मख़नफ़ का बयान है कि मुझसे अब्दुल्लाह बिन आसिम ने कहा ज़हाक बिन अब्दुल्लाह मशिरक़ी की ज़बानी उन्होंने बयान किया कि इमाम के ख़ुतबे को सुनकर अज़ीज़ों के जवाबों के बाद मुस्लिम बिन औसजा असदी खड़े हुए और कहा "क्या भला हम आपको छोड़कर चले जाएं और अल्लाह की बारगाह में आपके हक़ को अदा करके जवाब देही का सामान न करे? बख़ुदा मैं उन्हें नेज़े लगाऊँगा यहाँ तक कि उनके सीनों में अपना नेज़ा तोड़ दूँ और उन्हें तलवार लगाऊँगा जब तक कि उसका दस्ता मेरे हाथ में बरक़रार रहे और आप से जुदा न हूँगा यहाँ तक कि अगर मेरे पास कोई हथियार न होगा जिससे जंग कर सकूँ तो आपकी इमदाद में पत्थरों की बारिश करूँगा। यहाँ तक कि आपके साथ जान दे दूँ। और साद बिन अब्दुल्लाह हनफ़ी ने कहा "बख़ुदा हम आपको नहीं छोड़ेंगे यहाँ तक कि अल्लाह के इल्म में साबित हो जाए हमने रसूले ख़ुदा[स०] के बाद आपके बारे में उनके हक़ को अदा किया। बख़ुदा अगर मुझे मालूम होता कि मैं क़त्ल किया जाऊँगा फिर ज़िन्दा किया जाऊँगा फिर ज़िन्दा जला दिया जाऊँगा फिर मेरी ख़ाक हवा में बिखेर दी जाएगी। यही मेरे साथ सत्तर मरतबा होगा जब भी मैं आपसे जुदा न होता। यहाँ तक कि आख़िरी बार भी मुझे मौत आपके सामने आती। फिर मैं ऐसा अब क्यों न करूँगा जबकि जानता हूँ कि एक दफ़ा का क़त्ल होना है। फिर वह इज़्ज़त व राहत है जो कभी ख़त्म होने वाली नहीं।" और ज़ुहैर बिन क़ैन ने कहा "मुझे तो आरज़ू है कि मैं क़त्ल किया जाता फिर ज़िन्दा होता फिर क़त्ल किया जाता। यहाँ तक कि इसी तरह हज़ार दफ़ा मारा जाता और इस ज़रिये से अल्लाह क़त्ल होने की मुसीबत को आपके और आपके ख़ानदान के जवानों की जान से दूर कर देता।" ज़हाक़ का बयान है कि आपके अस्हाब में से कई आदमियों ने इसी से मिलती—जुलती तक़रीरें कीं। और सबने यह कहा कि बख़ुदा हम आपसे जुदा न होंगे बल्कि हमारी जानें आप पर फ़िदा होंगी। हम अपनी गर्दनें, पेशानियाँ और हाथ आपके ढाल बनाएंगे। हाँ, जब हम क़त्ल हो जायेंगे तो समझेंगे कि हमने अपना हक़ अदा कर दिया और जो फ़र्ज़ हमारा था वह पूरा हो गया।

इन तक़रीरों के शुरु में ज़हाक बिन अब्दुल्लाह की सनद के दोबारा ज़िक्र करने से ज़ाहिर होता है कि इन तक़रीरों का ज़िक्र इमाम ज़ैनुलआबेदीन[अ०] वाली रिवायत में नहीं है। और शायद इसी लिए शेख़ मुफ़ीद ने उनका ज़िक्र नहीं किया मगर इमाम की रिवायत में भी इससे इन्कार नहीं किया गया है। बल्कि ख़ुद हज़रत के कुछ वाक्यों की तरह जो संक्षिप्त करने के लिए उस रिवायत में दर्ज नहीं हुए हैं यह हिस्सा भी मालूम होता है कि बयान नहीं किया गया है। लेकिन वह किसी तरह भी क़ाबिले इन्कार नहीं है।

दुश्मन की फ़ौज के सामने इमाम का ख़ुतबा

सुब्हे आशूर जब फ़ौज की सफ़ें खड़ी हो चुकी। शेख़ मुफ़ीद लिखते हैं कि:—

हज़रत इमाम हुसैन[अ०] ने अपनी सवारी का ऊँट मंगवाया। उस पर सवार हुए और ऊँची आवाज़ में फ़रमाया। इस तरह कि फ़ौज के बड़े हिस्से तक आपकी आवाज़ पहुँच रही थी कि "ऐ इराक़ वालों, ऐ लोगों मेरी बात सुनो और जल्दी से काम न लो। मैं चाहता हूँ कि जो तुम्हारा हक़ मुझ पर है उसको अदा कर दूँ और तुम्हें नसीहत करके अपना उज़्र ख़त्म करूँ। इसके बाद अगर तुमने इन्साफ़ से काम लिया तो यह तुम्हारे लिए अच्छा होगा और अगर इन्साफ़ न किया तो फिर जो करना हो वह कर लेना। और कोई हसरत दिल में उठा न रखना और न मेरे साथ रिआयत करना न मोहलत देना। मेरा मददगार वह अल्लाह है जिसने क़ुरआन नाज़िल किया और वही तमाम नेक लोगों का मददगार है।" इसके बाद आपने हम्दो सनाए इलाही अदा की और ख़ुदावन्दे आलम के शायाने शान तारीफ़ की और उसकी बड़ाई बयान की। हज़रत पैग़म्बरे ख़ुदा[स०] और दूसरे अम्बिया और

मलाएका पर दुरूद भेजा इस शान से कि कोई बोलनेवाला आपके पहले और आपके बाद फ़साहतो बलाग़त में आपसे बढ़कर बोलते सुना नहीं गया। फिर फ़रमाया कि ''मेरा नसब तो देखो। ग़ौर करो कि मैं कौन हूँ। फिर ज़रा अपने गरेबान में मुँह डाल कर अपने कामों को देखो और सोचो कि क्या मेरा क़त्ल और मेरी बेहुरमती करना तुम्हारे लिए मुनासिब है? क्या मैं तुम्हारे नबी का नवासा और उनके वसी चचाज़ाद भाई और सबसे पहले उन पर ईमान लाने वाले शख़्स का फ़रज़न्द नहीं हूँ? क्या सय्यदुश्शोहदा हमज़ा मेरे बाप के चचा और जाफ़रे तय्यार जो क़ुदरत के दिये हुए बाज़ुओं से जन्नत में उड़ते हैं, मेरे चचा नहीं थे? क्या तुम्हें नहीं मालूम कि पैग़म्बरे ख़ुदा ने मेरे और मेरे भाई के बारे में फ़रमाया कि यह दोनों जन्नत के जवानों के सरदार हैं। अब अगर तुम मुझ ही को सच्चा समझ लो और हक़ीक़तन (वास्तव में) जो मैं कहता हूँ वह सही है और बख़ुदा मैंने जब से मुझे मालूम है कि अल्लाह उसे नापसन्द करता है कभी भी झूठ नहीं बोला, तो ख़ैर और अगर तुम मुझे झूठा समझ लो तो तुम में से ऐसे लोग हैं जिनसे अगर तुम उसके मुताल्लिक़ पूछो तो वह तुम्हें बता देंगे। पूछ लो जाबिर इब्ने अब्दुल्लाह अंसारी से अबू सईद ख़ुदरी से सुहैल बिन साद सऊदी से ज़ैद बिन अरक़म से अनस बिन मालिक से यह तुम्हें बताऐंगे कि उन्होंने ख़ुद यह हदीस रसूले ख़ुदा[स०] से मेरे और मेरे भाई के बारे में सुनी है। क्या यह तुम्हें मेरा ख़ून बहाने से रोकने के लिए काफ़ी नहीं है?''

शिम्र ने कहा, ''मै। ख़ुदा की एक हर्फ़ पर इबादत करता हूँ। अगर ये समझ में आए कि आप क्या कहते हैं।'' हबीब बिन मज़ाहिर ने कहा ''बख़ुदा मैं यह समझता हूँ और मैं गवाही देता हूँ कि तू ठीक कहता है। तू नहीं समझता कि हम क्या कह रहे हैं। तेरे दिल पर तो ख़ुदा ने मुहर लगा दी है।'' फिर इमाम हुसैन[अ०] ने फ़रमाया कि ''अच्छा अगर तुम्हें इसमें शक है तो क्या इसमें भी शक है कि मैं तुम्हारे नबी का नवासा हूँ। ख़ुदा की क़सम पूरब और पश्चिम के बीच में इस उम्मत बल्कि किसी दूसरी जमाअत में भी कोई नबी का नवासा मौजूद नहीं है। ज़रा सोचो तो क्या तुम मुझसे किसी के ख़ून का बदला चाहते हो। जिसे मैंने क़त्ल कर दिया हो? या किसी माल की माँग कर रहे हो जिसे मैंने बरबाद कर दिया हो। या किसी ज़ख़्म का बदला चाहते हो?'' अब सब चुप हो गए। कोई कुछ न बोलता था। हज़रत ने पुकारा, ''ऐ शीस बिन रबओ! ऐ हिजार बिन अबजर! ऐ क़ैस बिन अशअस! ऐ यज़ीद बिन हारिस। क्या तुमने मुझे नहीं लिखा कि मेवे पक गए हैं। बाग़ हरे भरे हैं और आपकी मदद के लिए एक तैयार फ़ौज मौजूद है।'' क़ैस बिन अशअस ने कहा, ''हम नहीं जानते आप क्या कहते हैं? बहरहाल आप अपने रिश्तेदारों के फ़ैसले पर सर झुका दें। वह आपके साथ कोई नापसन्द बर्ताव कभी न करेंगे।'' हज़रत ने फ़रमाया, ''नहीं! बख़ुदा मैं ज़लील आदमियों की तरह अपने को तुम्हारे हवाले न करूँगा और न गुलामों की तरह भाग जाऊँगा।'' फिर आपने बलन्द आवाज़ से फ़रमाया ''ऐ अल्लाह के बन्दों! अल्लाह से पनाह माँगना चाहिए जब तुम मुझे अपने हमलों का निशाना बनाओ। मैं पनाह माँगता हूँ हर उस मग़रूर (घमण्डी) से जो क़यामत पर ईमान न रखता हो।'' इसके बाद आपने ऊँट को बिठा लिया और उक़बा बिन समआन को हुक्म दिया। उन्होंने ले जाकर उसे बाँध दिया।

तबरी में ये पूरा ख़ुतबा ज़हाक़ बिन क़ैस मश्रिक़ी की ज़बानी नक़ल किया है।

(जिल्द–6 सफ़हा 242–243) इसके अलफ़ाज़ शैख़ मुफ़ीद की बयान की हुई रिवायत से बिल्कुल मिलते–जुलते तो नहीं हैं बल्कि थोड़ा–थोड़ा फ़र्क़ शुरु से आख़िर तक है। फिर भी मतलब में बहुत कम फ़र्क़ पाया जाता है।

यह फ़र्क़ निम्नलिखित है:–

1– ख़ुतबे के पहले दोनों जगह, इमाम के ख़ेमों के सामने ख़न्दक़ में भड़कते हुए शोलों को देखकर शिम्र का बदतमीज़ी के साथ बात करना और मुस्लिम बिन औसजा का इमाम से इजाज़त तलब करना कि मैं उसको तीर का निशाना बना दूँ और इमाम का यह फ़रमाना कि मैं अपनी तरफ़ से लड़ाई शुरु नहीं करना चाहता, लिखा हुआ है। शैख़ मुफ़ीद ने इसके बाद ख़ुतबे को इस तरह

शुरु किया है "फिर हज़रत ने अपनी सवारी का ऊँट मंगवाया।" तबरी ने कहा है कि "जब दुश्मन की फ़ौज इमाम से क़रीब आ गई तो आपने अपनी सवारी का ऊँट मंगवाया।"

(न० 2 और 6 तक सय्यदुल उलमा ने सिर्फ़ अरबी इबारतें लिखी हैं। उनका रूपान्तर नहीं दिया है। इसलिए इस तर्जुमे में उसको छोड़ दिया गया है।)

7— इरशाद में इसी के बाद हम्दो सनाए इलाही का ज़िक्र शुरु कर दिया गया है। तबरी ने उसके बाद यह लिखा है "रावी ने कहा कि जब हज़रत की बहनों ने आपकी आवाज़ सुनी तो रोने—धोने की आवाज़ बलन्द की और बेटियाँ भी रोईं। उनकी आवाज़ें बलन्द हुईं तो हज़रत ने अपने भाई अब्बास बिन अली और बेटे अली अकबर को भेजा और उनसे कहा कि औरतों को ख़ामोश करो। आइन्दा वह बहुत रोएंगी। जब वह दोनों उन्हें चुप कराने के लिए गए तो हज़रत ने फ़रमाया कि ख़ुदा इब्ने अब्बास को जिन्दा रखे। रावी कहता है कि हमारा ख़याल है कि आपने रोने की आवाज़ सुनकर यह अलफ़ाज़ इसलिए कहे कि इब्ने अब्बास ने आपको औरतों के साथ ले जाने से मना किया था। जब वह आवाज़ें रुक गईं तो आपने हम्दो सनाए इलाही अदा की।

इस मौक़े पर शैख़ मुफ़ीद का इस हिस्से को न लिखना शक पैदा करता है कि शायद यह बढ़ा हुआ हिस्सा बाद में बढ़ाया गया है। सही सिर्फ़ इतना है कि औरतों ने रोने की आवाज़ बलन्द की और यह कि हज़रत ने जनाबे अब्बास व अली अकबर को उनके समझाने के लिए भेजा। क्योंकि यह औरतों की फ़ितरत है और नामूस की हिफ़ाज़त मर्दों का फ़र्ज़ है। इस लेहाज़ से यह बात क़यास (अनुमान) से सही मालूम होती है। मगर इस मौक़े पर इब्ने अब्बास को याद करना कि उन्होंने जो सलाह दी थी अब उसकी राय को सही होने का एहसास हो रहा है, बिल्कुल ग़लत है। इन अहले हरम का साथ होना कर्बला की घटना की बुनियादी हैसियत से एक ज़रूरी कड़ी की हैसियत रखता है। जिसे हज़रत इमाम हुसैन^{अ०} ने जिस तरह पहले ज़रूरी समझा उसी तरह वह बाद में ज़रूरी साबित हुआ। इस बारे में अगर ग़ौर करते तो बाद में ख़ुद इब्ने अब्बास को महसूस होना चाहिए कि उन्होंने ग़लत राय दी थी। यह नहीं कि उनकी राय को सही मानने की इमाम हुसैन[अ०] को ज़रूरत महसूस हुई।

तबरी की रिवायत में एक बात ज़्यादा है वह बड़ी महत्वपूर्ण है। इससे यह ज़ाहिर होता है कि इमाम हसन[अ०] व इमाम हुसैन[अ०] के बारे में पैग़म्बर की यह हदीस कि यह जन्नत के जवानों के सरदार हैं आम मुसलमानों में चाहे वह किसी फ़िरक़े व जमाअत का हो आमतौर पर कही जाती थीं। हज़रत का इस हदीस को कर्बला में पेश करना अक़ली तौर पर भी इस बात का सुबूत है कि ज़रूर लोग इसको आमतौर पर जानते थे। नहीं तो इतने सख़्त दुश्मनों को इतने बड़े मजमे में इसको पेश न किया जाता। सूरते हाल से भी ज़ाहिर है कि उनमें से एक आदमी ने भी इसके सही होने से इन्कार नहीं किया। इससे ज़ाहिर हुआ कि इस हदीस का पैग़म्बरे ख़ुदा[स०] की निस्बत से बयान करना बिल्कुल आम और क़तई हैसियत रखता था। इसके विरोध में किसी को दम मारने की गुन्जाइश नहीं थी।

शिम्र के बीच में बोलने पर हबीब बिन मज़ाहिर ने जवाब दिया है *(इस सिलसिले में सय्यदुल उलमा ताबासराह ने इमाम हुसैन[अ०] की तक़रीर के बारे में तबरी और इरशाद शैख़ मुफ़ीद में जो थोड़ा सा फ़र्क़ है उसका उल्लेख किया है। और उसके बारे में अपनी राय भी दी है। इस विस्तार के साथ इसको यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए यह हिस्सा छोड़ दिया गया है। क्योंकि इससे असल तक़रीर पर कोई असर नहीं पड़ता)।*

ज़ुहैर बिन क़ैन की तक़रीर

(तबरी जिल्द—6 सफ़हा—293)

अबू मख़नफ़ का बयान है कि मुझसे अली बिन हन्ज़ला बिन साद शामी ने कहा अपनी क़ौम के एक ऐसे शख़्स की ज़बानी जो कर्बला में मौजूद था। जिसका नाम कसीर बिन अब्दुल्लाह शाबी था। वह कहता है कि जब हम ने हुसैन[अ०] पर हमला किया तो ज़ुहैर बिन क़ैन हुसैन[अ०] की फ़ौज से निकल कर हमारे सामने आए। वह अपने घोड़े पर सवार और लड़ाई के सब हथियारों से लैस थे। उन्होंने कहा, "ऐ कूफ़े वालों! डरो, ख़ुदा के

अज़ाब से डरो। यक़ीनन मुसलमान पर फ़र्ज़ है कि वह अपने मुसलमान भाई को नसीहत करे और हम अभी तक भाई—भाई हैं। एक ही दीन और एक ही मिल्लत पर जब तक हमारे बीच तलवार नहीं चलती है। तुम हमारी तरफ़ से नसीहत के मुस्तहक़ हो। हाँ जब तलवार चलने लगेगी तो फिर, हमारे ताल्लुक़ात ख़त्म हो जाएंगे। और हम एक उम्मत और तुम दूसरी उम्मत हो जाओगे यक़ीनन अल्लाह ने हमको और तुमको आज़माया है अपने रसूल हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स॰] की औलाद के साथ ताकि ज़ाहिर हो कि हमारा और तुम्हारा बर्ताव क्या होता है? हम तुम्हें दावत देते हैं कि तुम उनकी मदद करो और ज़ालिम उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद का साथ छोड़कर अलग हो जाओ। क्योंकि तुम्हें उससे और उसके बाप से सिवाए बुराई के कभी कोई नतीजा नहीं मिल सकता। जब तक कि वह सत्ता में है वह तुम्हारी आँखों में सलाइयाँ फिरवाते, हाथ पैर और जिस्म के दूसरे हिस्सों को कटवाते, उन्हें फाँसी दिलवाते और तुम्हारे अच्छे आदमियों और कुरआन के हाफ़िज़ों को क़त्ल कराते रहे हैं। जैसे हज्र बिन अदी और उनके साथियों और हानी बिन उरवह और ऐसे ही दूसरे लोग।'' रावी कहता है कि यह सुनकर शाम की फ़ौज के लोग उन्हें गालियाँ देने लगे और उबैदुल्लाह बिन ज़ियाद की तारीफ़ें और उसके लिए दुआएं करने लगे। और कहा, बख़ुदा हम न मानेंगे जब तक कि तुम्हारे सरदार हुसैन[अ॰] और उनके साथ वालों को क़त्ल न करें। या उन्हें और उनके साथियों को ज़िन्दा इब्ने ज़ियाद के पास भेजें। जुहैर ने उनसे कहा, ''ख़ुदा के बन्दों! फ़ातिमा ज़हरा[स॰] की औलाद सुमय्या के बेटे से ज़्यादा मदद की हक़दार है। अच्छा, अगर तुम उनकी मदद नहीं भी करते तो ख़ुदा का वास्ता उन्हें क़त्ल तो न करो। बल्कि उनके मामले को सीधे यज़ीद पर छोड़ दो वो हुसैन[अ॰] के क़त्ल के बिना भी तुमसे ख़ुश रह सकता है।'' यह सुनकर शिम्र बिन ज़िलजौशन ने उन्हें एक तीर लगाया और कहा ''चुप रहो! ख़ुदा तुम्हारी आवाज़ बन्द करे तुमने अपनी लंबी तक़रीर से हमें परेशान कर दिया।'' जुहैर ने कहा: ''ऐ जाहिल और वहशी के बच्चे! मैं तुझसे बात नहीं कर रहा हूँ। तू तो जानवर है। बख़ुदा मेरे ख़याल से तुमको कुरआन की दो आयतें भी याद नहीं हैं। तुझे क़यामत के दिन बेइज़्ज़ती और अज़ाब के सिवा कुछ नहीं मिलेगा।''

शिम्र ने कहा: ''देखो थोड़ी देर में अल्लाह तुम्हें और तुम्हारे सरदार को क़त्ल करा देगा।'' उन्होंने कहा ''तू मौत से मुझे डराता है। बख़ुदा उनके साथ मरना मुझे तुम लोगों के साथ हमेशा की ज़िन्दगी हासिल करने से ज़्यादा पसन्द है।'' इसके बाद फिर वह फ़ौज की तरफ़ मुख़ातब हुए और बलन्द आवाज़ से कहा, ''ऐ ख़ुदा के बन्दों! अपने मज़हब के बारे में इस जाहिल अहमक़ और उसके ऐसे दूसरे लोगों के धोके में न आ जाओ। बख़ुदा शफ़ाअते मुहम्मदे मुस्तफ़ा[स॰] उन लोगों को नसीब नहीं हो सकती कि जो उनकी औलाद और अज़ीज़ों का ख़ून बहाएं और उनके मददगारों को क़त्ल करे।'' जुहैर इतना कह चुके तो एक शख़्स ने (अस्हाबे हुसैन[अ॰] में से) पुकार के कहा कि हज़रत इमाम हुसैन[अ॰] फ़रमा रहे हैं कि बस चले आओ। अगर मोमिने आले फ़िरऔन ने अपनी क़ौम की नसीहत का हक़ अदा कर दिया और पूरी कोशिश से उन्हें हक़ की तरफ़ दावत दी तो यक़ीनन तुमने भी उन्हें नसीहत कर दी और पूरी कोशिश कर दी। मगर यह नसीहत, और कोशिश और हिदायत कोई फ़ायदा भी तो रखे।

हुर की तक़रीर

उमर बिन साद की फ़ौज से हुर बिन यज़ीद रियाही ने अलग होकर इमाम की ख़िदमत में हाज़िर होकर जेहाद की इजाज़त हासिल की। इसके बाद लश्कर इब्ने ज़ियाद के सामने जाकर तक़रीर की। शैख़ मुफ़ीद लिखते हैं:—

उन्होंने कहा कि ''ऐ अहले कूफ़ा! तुम्हारी माएं तुम्हारे मातम में बैठें। क्या ग़ज़ब है कि तुम ने इस नेक किरदार बुज़ुर्ग को दावत दी। जब वह आए तो तुमने उनको छोड़ दिया और तुमने यह ख़याल ज़ाहिर किया कि तुम उनके सामने जानें निसार करोगे फिर ख़ुद उन्हीं के ख़िलाफ़ क़त्ल करने के लिए दौड़ पड़े। और तुमने उनकी साँस का रास्ता बन्द किया। उनका गला घूँट रखा और उनको हर तरफ़ से घेर लिया है कि उन्हें अल्लाह की

लम्बी चौड़ी ज़मीन में किसी तरफ़ जाने का रास्ता नहीं देते तो। वह तुम्हारे साथ में मिस्ल कैदी के बेबस हो गए हैं कि न अपने फ़ायदे का कोई सामान कर सकते न नुक़सान को रोक सकते हैं। तुमने उन्हें उनकी औरतों और बच्चों और तमाम अज़ीज़ों को रोक रखा है। इस बहती फुरात के पानी से जिसे यहूदी, ईसाई और मजूसी और इराक़ के सुअर और कुत्ते तक भी पीते और लोटते हैं अब उन लोगों का यह आलम है कि प्यास ने उन्हें ज़मीन पर डाल दिया है क्या बुरा तुमने सूलूक किया है मुहम्मदे मुस्तफ़ा[स०] की औलाद के साथ! ख़ुदा करे, तुम्हें क़यामत की प्यास में सैराब होना नसीब न हो।'' तक़रीर यहाँ तक पहुँची थी कि कुछ लोगों ने उन पर तीरों से हमला कर दिया। वह वहाँ से हट कर फिर इमाम के पास आकर खड़े हो गए।

तबरी ने भी इसका ज़िक्र किया है। (जिल्द—6, सफ़हा—245)

हन्ज़ला बिन असअद की तक़रीर

हन्ज़ला बिन असअद शबामी हाफ़िज़े कुरआन थे उनकी तक़रीर भी आयते कुरआन ही के साथ थी। तबरी ने लिखा है। (जिल्द—6 सफ़हा—254)

हन्ज़ला बिन असअद शबामी आए और इमाम के सामने खड़े हुए और पुकार कर कहने लगे (आयाते कुरआनी जिनका तर्जुमा यह है) ''ऐ क़ौम! मैं तुम्हारे लिए डरता हूँ ऐसे लोगों के नतीजे से जिन पर ख़ुदा ने अज़ाब नाज़िल किया जैसे क़ौमे नूह और आद व समूद और जो उनके बाद थे। और अल्लाह बन्दों पर ज़ुल्म नहीं चाहता और ऐ क़ौम! मैं तुम्हारे लिए डर रहा हूँ रोज़े क़यामत के हौल से जिस वक़्त तुम भाग रहे होगे मगर ख़ुदा से कोई बचाने वाला न होगा। और जिसे अल्लाह गुमराह छोड़ दे उसका कोई हिदायत करने वाला नहीं हो सकता'' इसके बाद कि ''ऐ क़ौम हुसैन को क़त्ल न करो नहीं तो अल्लाह तुम्हें अज़ाब का हक़दार कर देगा और फ़साद करने वाला हमेशा नाकाम रहता है। इमाम हुसैन[अ०] ने फ़रमाया: ''ऐ इब्ने असअद अल्लाह अपनी रहमत तुम्हारे शामिले हाल करे। अज़ाब के मुस्तहक़ तो यह उसी वक़्त हो गए जब उन्होंने तुम्हारी दावते हक़ को ठुकरा दिया और तुम्हारे ख़िलाफ़ चढ़ दौड़े। इस मक़सद से कि तुम्हारा और तुम्हारे अस्हाब का ख़ून बहाएं। हाँलांकि उन्होंने अब तो तुम्हारे नेक भाईयों को क़त्ल भी कर दिया है।''

शहीदे कर्बला की आख़िरी तक़रीर

यह तक़रीर ऐसे नाज़ुक मौक़े पर हुई थी जब किसी दूसरे तक़रीर करने वाले की न ज़बान में ताक़त हो सकती थी न दिल में कि वह इस वक़्त एक जुमला भी बतौर तक़रीर कह सके। वह वह मौक़ा है जब मुजाहिदे कर्बला पुश्ते फ़रस (घोड़े की पीठ) से ज़मीन पर आ चुका था। दिल पर तो सौ डेढ़ सौ दाग़ थे ही अब जिस्म पर सैकड़ों ज़ख़्म भी लग चुके हैं। तबरी ने लिखा है:—

अबु मख़नफ़ का बयान है कि मुझ से सक़ाब बिन ज़ुहैर ने कहा हमीद बिन मुस्लिम की ज़बानी (हमीद से किसने बयान किया? इसका ज़िक्र नहीं हुआ है क्योंकि ख़ुद हमीद वाक़िए कर्बला में मौजूद न थे) रावी ने कहा कि हज़रत (रोज़े आशूरा) एक ख़ज़ का जुब्बा पहने थे और अमामा बाँधे थे और दसमां का ख़िज़ाब लगा हुआ था। कहा मैंने सुना आपको कि आप शहीद होने के क़ब्ल कह रहे थे उस हालत में कि जब पैदल एक निहायत बहादुर शहसवार की तरह जंग कर रहे थे। वारों को बचाते थे और दुश्मन पर हर मुनासिब मौक़े पर वार भी करते थे और सवारी पर हमला आवर होते थे। वह कह रहे थे ''तुम मेरे क़त्ल पर बाहम एक दूसरे को तरग़ीब (प्रलोभन) दे रहे हो बख़ुदा मुझसे बढ़कर कोई ऐसा न होगा जिसके क़त्ल करने पर अल्लाह नाराज़ हो। बख़ुदा मैं उम्मीद करता हूँ कि तुम्हारी इस तज़लील (बेइज़्ज़ती) व तौहीन की बदौलत ख़ुदा मुझे इज़्ज़त देगा। फिर तुम से मेरा बदला लेगा इस तरह कि तुमको ख़बर भी न होगी। बख़ुदा जब तुम मुझे क़त्ल कर लोगे तो ख़ुद तुम में फूट पड़ जायेगी। और तुम में ख़ूँरेज़ी होगी। फिर इतना ही नहीं बल्कि अज़ाब दर्दनाक (आख़िरत का) भी सामने आयेगा।''

कर्बला के बाद मुस्तक़बिल ने हज़रत इमाम हुसैन[अ०] के एक—एक हर्फ़ को सही साबित कर दिया।